रामतीर्थ संदेश

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

रामतीर्थ-संदेश

पहला भाग

स्वामी रामतीर्थ की रचनाओं में से
उनकी जीवन-शिक्षाओं का
बालोपयोगी संग्रह

१९७६

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली.

•

ग्यारह वार : १९७६
पचास पैसे
संशोधित मूल्य -.60
मुद्रक
उद्योगशाला प्रेस,
किंग्सवे, दिल्ली-९

प्रकाशकीय

इस पुस्तिका में स्वामी रामतीर्थ के ग्रंथों में से चुनकर सामग्री इकट्ठी की गई है। संकलन करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है कि स्कूलों और कालेजों के छात्रों और छात्राओं के चरित्र-निर्माण की दृष्टि से जो विचार स्वामीजी ने प्रकट किये हैं, वे इस पुस्तिका में अवश्य आ जायं। यह सब जानते हैं कि नये भारत का निर्माण करने-वालों में स्वामी रामतीर्थ का स्थान बहुत ऊंचा है। उन्होंने गिरे हुए भारत में आत्म-विश्वास पैदा करने के लिए जो ज्योति जगाई थी, उससे आज भी उतना ही लाभ उठाया जा सकता है, जितना उनके समय में उठाया गया था। स्वामीजी की मान्यता थी कि मनुष्य के अन्दर शक्ति का स्रोत है। उसे निराश और निरुत्साहित नहीं होना चाहिए। उनके वेदान्त का यही सन्देश है कि मनुष्य और ईश्वर एक है। दुई का भाव मिटा देने में ही कल्याण है।

ऐसे सन्देश को जितने व्यक्ति पढ़ें, उतना ही अच्छा है। इस प्रकार की पुस्तकें लाखों की संख्या में छपनी उचित हैं। यह काम राज्यों के शिक्षा-विभागों की सहायता और सहयोग से बड़ी सरलता से हो सकता है। वे इस पुस्तिका को अपने राज्य के स्कूलों और कालेजों के पढ़ने के लिए स्वीकृत कर सकते हैं। युवकों को सच्चा नागरिक बनने में सहायता देना राष्ट्रीय कर्त्तव्य है। उस कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए जो कुछ भी किया जाय, थोड़ा है।

जनता से, विशेषकर विद्यार्थी-वर्ग से, हमारा अनुरोध है कि इस पुस्तक को पढ़ें और इसमें कही गई बातों पर विचार करें। वे देखेंगे

कि उनके हृदय का कायरता-रूपी अन्धकार मिटेगा और उत्साह एवं आत्मविश्वास का उज्ज्वल प्रकाश भरेगा। मनुष्य को मनुष्य बनने के लिए ऐसी पुस्तकें पढ़ना और उनपर मनन करके तदनुकूल अपने जीवन को ढालना आवश्यक है।

पुस्तक की सामग्री रामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त हुई और इसकी तैयारी में हिन्दी में सुपरिचित लेखक श्री विष्णु प्रभाकर का सहयोग रहा है। हम दोनों के आभारी हैं।

ग्यारहवां संस्करण

हमें हर्ष है कि पुस्तक का नवां संस्करण पाठकों के हाथों में पहुंच रहा है। हम आशा करते हैं कि भविष्य में इस पुस्तक की लोकप्रियता और बढ़ेगी।

—मंत्री

विषय-सूची

रामतीर्थ-सन्देश

(पहला भाग)

: १ :

प्यार

ओ प्यारे नन्हे कुसुम, सुनो !
निज ओस-कणों से भरे नयन से देखो तो,
मुझसे सच-सच यह बतलाओ—
जब कोई और न पास तुम्हारे होता है,
उस समय तुम्हारा सत्य रूप क्या होता है ?

* * *

उत्तर में भरकर कोमल आह, कुसुम बोला—
एकाकी[1] मैं क्या होता हूं ?
यदि मुझको बतलाना ही हो
दुख से स्वीकार करूंगा मैं
मैं क्या हूं, इसे न जान कभी भी तुम सकते !
जब मैं एकाकी होता हूं,
तब भी सब भाई-बहन मुझे घेरे रहते,
बन सुरभि[2] पवन में या झड़कर हो भू-लुण्ठित ।[3]

□

---

[1]अकेला [3]सुगन्ध [2]धरती पर लेटकर

: २ :

नक़द धर्म

एक मनुष्य ने कुछ धन जमीन में गाड़ रखा था। उसके लड़के को मालूम हो गया। लड़के ने ज़मीन खोदकर धन निकाल लिया और खर्च कर डाला; किन्तु तौलकर उतने ही वजन के पत्थर वहां रख छोड़े। कुछ दिनों के बाद जब बाप ने ज़मीन खोदी और रुपया न पाया तो रोने लगा—"हाय! मेरी दौलत कहां गई?" लड़के ने कहा—"पिताजी, रोते क्यों हो? आपको उसे काम में तो लाना ही न था, और रख छोड़ने के लिए देख लो, उतने ही तौल के पत्थर वहां मौजूद हैं।"

धार्मिक वाद-विवाद और झगड़े जो होते हैं, वे नक़द धर्म पर नहीं होते, उधार धर्म पर होते हैं। नक़द धर्म वह है जो मरनें के बाद नहीं, किन्तु वर्तमान जीवन से सम्बन्ध रखता है। उधार धर्म अन्ध-विश्वास पर निर्भर होता है। उधार धर्म कहने के लिए है; नक़द धर्म करने के लिए। धर्म के उस भाग पर, जो नक़द है, सब धर्म सहमत हैं। "सत्य बोलना, विद्या-अध्ययन करना और उसे आचरण में लाना, स्वार्थ से रहित होना, दूसरे के धन आदि को देखकर अपना चित्त न बिगाड़ना, संसार के लालच और धमकियों के जादू में आकर वास्तविक स्वरूप को न भूलना,

दृढ़चित्त और स्थिर स्वभाव होना आदि-आदि ।" इस नक़द धर्म पर कहीं दो मत नहीं हो सकते । उधार के दावे वाद-विवाद करने की प्रीति रखनेवाले लोगों को सौंपकर स्वयं वर्तमान कर्त्तव्य, यानी नक़द धर्म पर चलनेवाले ही उन्नति करते हैं और वैभव पाते हैं ।

भारतवर्ष और अमरीका में क्या भेद है ? यहां दिन है तो वहां रात है । वहां दिन है तो यहां रात । जिन दिनों हिन्दुस्तान का सितारा ऊंचा था, अमरीका को कोई जानता भी न था । आज अमरीका उन्नति पर है तो भारतवर्ष की कोई पूछ नहीं । हिन्दुस्तान में बाजार आदि में रास्ता बाईं ओर चलते हैं, वहां दाईं ओर । पूजा और सत्कार के समय यहां जूता उतारते हैं वहां टोपी । यहां घरों में राज्य पुरुषों का है, वहां स्त्रियों का; इस देश में यह शिकायत है कि विधवा-ही-विधवा हैं; उस देश में कुमारी-ही-कुमारी अधिक हैं । हम कहते हैं—"पुस्तक मेज पर है ।" वे कहते हैं—"पुस्तक पर मेज है" (Book on the table) । हिन्दुस्तान में गधा और उल्लू मूर्खता के चिह्न हैं, उस देश में गधा और उल्लू भलाई और बुद्धिमत्ता के चिह्न हैं । इस देश में जो पुस्तक लिखी जाती है, वह जबतक आधी के लगभग पहले के विद्वानों के प्रमाणों से न भरी हो, उसका कुछ सम्मान नहीं होता; उस देश में पुस्तक की सारी बातें नवीन न हों तो उसकी कोई क़द्र ही नहीं । यहां किसी को कोई लाभदायक बात मालूम हो जाय तो वह उसे छिपाकर रखता है; वहां उसे छापेखाने द्वारा प्रकाशित कर

देते हैं। यहां अधर्म की रूढ़ियों की उपासना अधिक है, वहां नक़द धर्म बहुत है। हमारे यहां इस बात में बड़ाई है कि औरों से न मिलें, अपने ही हाथ से पका-कर खायें और सबसे अलग रहें। वहां पर जितना औरों से मिलें, उतनी ही बड़ाई है। यहां पर अन्य देशों की भाषा पढ़ना दोषपूर्ण समझा जाता है, वहां जितना अन्य देशों की भाषा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उतना ही अधिक सम्मान होता है।

जब राम[1] जापान को जा रहा था तो जहाज पर अमरीका का एक वयोवृद्ध प्रोफेसर मित्र बन गया। वह रूसी भाषा पढ़ रहा था। पूछने पर मालूम हुआ कि ग्यारह भाषाएं वह पहले से जानता है। उससे पूछा गया—"इस उम्र में यह नवीन भाषा क्यों सीखते हो?" उसने उत्तर दिया—"मैं भूगर्भ-शास्त्र[2] (Geology) का प्रोफेसर हूं। रूसीभाषा में भूगर्भ शास्त्र की एक अनोखी पुस्तक लिखी गई है। यदि मैं उसका अनुवाद कर सकूँगा तों मेरे देशवासियों को अत्यन्त लाभ पहुंचेगा। इसलिए रूसी भाषा पढ़ता हूं।" राम ने कहा—"अब तुम मौत के निकट हो! अब क्या पढ़ते हो? ईश्वर-सेवा करो। अनुवाद करने में क्या धरा है?" उसने उत्तर दिया—"लोक-सेवा ही ईश्वर-सेवा है। इसके साथ यदि यह भी मान लिया जाय कि इस काम को करते-

---

[1]स्वामी रामतीर्थ अपने को 'मैं' न कहकर 'राम' कहते थे।

[2]वह विद्या जिसके द्वारा हमें धरती बनावट का ज्ञान होता है।

करते मुझे नरक में जाना पड़े तो मैं जाऊंगा। इसकी कुछ परवाह नहीं। अगर मुझे घोर नरक के दुःख मिलते हैं तो हजार जान से भी कबूल हैं, यदि भाइयों को सुख और लाभ मिल जाय। इस जीवन में सेवा के आनन्द का अधिकार मैं मौत के उस पार के डर से नहीं छोड़ सकता।"

यही नक़द धर्म है। भगवद्गीता में बड़ी सुन्दरता से आज्ञा दी है–"कर्म तो करते ही जाओ, परन्तु फल पर दृष्टि मत डालो।"

एक मनुष्य बाग लगाता था। किसी ने पूछा–"बूढ़े मियां, क्या करते हो? तुम क्या इसके फल खाओगे? एक पांव तो तुम्हारा मानो पहले ही क़ब्र में है।"

माली ने उत्तर दिया–"औरों ने बोया था, हमने खाया। हम बोयेंगे, दूसरे खायेंगे।"

इसी प्रकार संसार का काम चलता है। जितने महापुरुष हो गये हैं–राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद आदि–क्या इन महापुरुषों ने उन वृक्षों का फल स्वयं खाया था, जिन्हें वे बो गये थे? कदापि नहीं। इन महापुरुषों ने तो केवल अपने शरीरों को मानो खाद बना दिया, फल कहां खाये? जिन वृक्षों का फल शताब्दियों के बाद लोग आज खा रहे हैं, वे उन ऋषियों की खाक से उत्पन्न हुए हैं। यह सिद्धान्त ही धर्म का वास्तविक प्राण है।

: ३ :

परिश्रमशीलता

जिस समय राम जापान से अमरीका को जा रहा था, जहाज में कोई डेढ़ सौ जापानी विद्यार्थी थे, जिनमें कुछ अमीरों के घराने के भी थे, पर उनमें शायद ही कोई ऐसा था जो अपने घर से रुपया लेकर चला हो। अधिकांश उनमें ऐसे थे कि जहाज का किराया भी उन्होंने घर से नहीं दिया था। कोई उनमें से अमीर यात्रियों के बूट साफ करने पर, कोई जहाज की छत के तख़्ते धोने पर, कोई ऐसे ही अन्य छोटे कामों पर नौकर हो गये थे और जहाज का खर्च इस प्रकार पूरा कर रहे थे। पूछने से उनका यह विचार पाया गया कि अपने राष्ट्र का धन विदेशों में जाकर क्यों खर्च करें? जहाज का किराया भी जहाज का काम करके देते हैं। अमरीका में जाकर इनमें से कुछ विद्यार्थी तो अमीरों के घरों में दिन भर मेहनत-मजदूरी करते थे और रात को रात्रि-पाठशालाओं में पढ़ते थे और कुछ रेल की सड़कों पर या बाजारों में रोड़ी कूटने पर या किसी और काम पर लग गये। ये लोग गरमियों में मजदूरी करते थे और जाड़ों में कालेज की शिक्षा पाते थे।

इसी प्रकार सात-आठ वर्ष रहकर अपने दिमाग को अमरीका की विद्या तथा कला-कौशल से, और अपनी जेबों को अमरीका के रुपये से भरकर ये जापानी

विद्यार्थी अपने देश में वापस आते हैं। प्रत्येक जहाज में बीसियों और कई बार सैकड़ों जापानी अमरीका इत्यादि देशों को जाते रहते हैं, हजारों बल्कि लाखों जापानी प्रतिवर्ष जहाजों में जर्मनी व अमरीका जाकर और वहां से विद्या प्राप्त करके वापस आते हैं। इसका परिणाम सामने है। पचास वर्ष हुए, जापान भारतवर्ष से भी नीचा था, आज यूरोप से भी बढ़ गया। तुम्हारा हाथ खूब गोरा-चिट्टा है और उसका खून बिलकुल साफ है। अगर कलाई पर पट्टी बांध दोगे तो हाथ का खून हाथ में ही रहेगा, शरीर के और भागों में नहीं जायगा, किन्तु गन्दा हो जायगा और हाथ सूख जायगा। इसी प्रकार जिन देशों ने यह कहा कि हम ही उत्तम हैं, हम ही अच्छे हैं, हम ही बड़े हैं, हम म्लेच्छों[1] या काफ़िरों[2] से क्यों सम्बन्ध रखें और अपने-आपको अलग-अलग कर लिया, उन्होंने अपने-आप पर मानो पट्टी बांधकर अपने को सुखा लिया। कहावत प्रसिद्ध है :

"बहता पानी निरमला, खड़ा सो गन्दा होय।"

यदि विचार करके देखा जाय तो मालूम होगा कि जिन देशों ने उन्नति की है, चलते ही रहने से की है। अमरीका के लोगों की स्थिति इस विषय में देखिये। औसतन ४०००० अमरीकन प्रतिदिन पेरिस में रहते हैं, झुण्ड-के-झुण्ड आते हैं और जाते हैं। कोई जरा-सा

---

[1]नीच जाति

[2]जो ईश्वर को नहीं मानते, उन्हें मुसलमान 'काफ़िर' कहते हैं।

नवीन आविष्कार या नई चीज फ्रांस में देखी, तो झट अपने देश में पहुंचा दी। प्राचीन विद्याओं और कला-कौशलों को सीखने में कोई कमी नहीं। हर मौसम अर्थात् जाड़ों में कोई ८०,००० अमरीकन मिस्र में आते-जाते हैं। मीनारों को देखते हैं। ४० फीसदी अमरीकन सारी दुनिया घूम चुके हैं। इस तरह ये लोग जहां विद्या होती है, वहां से लाकर उसे अपने देश में पहुंचा देते हैं। जर्मनीवालों की भी यही दशा है। अमरीका से आते समय राम जर्मन जहाजपर सवार था। उसमें लगभग तीन सौ मनुष्य पहले दर्जे के यात्री रहे होंगे। उनमें प्रोफेसर, ड्यूक[1], बैरन[2] और सौदागर लोग शामिल थे। दिन के समय साधारणतः राम जहाज की सबसे ऊंची छत पर जाकर बैठता था, एकान्त में पढ़ता-लिखता था या ध्यान-विचार में लग जाता था; किन्तु जर्मन लोग जहाज के ऊपर छत पर चढ़कर राम को नीचे लाते थे और राम के व्याख्यान कराते थे। राम को विदेशी समझकर उसके साथ काफिर व म्लेच्छ का बर्ताव तो न था; किन्तु यह खयाल था कि जितना भी ज्ञान इस विदेशी से मिल सकता है, ले लें। संयुक्त राज्य अमरीका में सबसे पहला नगर जो राम ने देखा, वह वाशिंगटन था। वहां वाशिंगटन की यूनि-वर्सिटी ने राम को हिन्दू-दर्शनशास्त्र पर व्याख्यान देने का निमन्त्रण दिया। व्याख्यान के बाद एक युवक

१-२ इंगलैंड में अमीर लोगों की दो उपाधियां।

प्रोफेसर से मिलना हुआ, जो अभी-अभी जर्मनी से वापस आया था। राम ने पूछा—"जर्मनी क्यों गये थे?" उसने जवाब दिया—"वनस्पति-शास्त्र[1] और रसायन-शास्त्र[2] में अपनी यूनिवर्सिटी की जर्मन-यूनिवर्सिटी से तुलना करने गया था।" और साधारण रीति से उसका परिणाम यह सुनाया कि दस वर्ष का समय हुआ, जर्मनी हमसे बढ़कर था; किन्तु आज हम उससे कम नहीं हैं।

जी-तोड़ परिश्रम के साथ विदेशियों से सीख-सीखकर उन लोगों ने विद्या को पाया और बढ़ाया है।

केलिफोर्निया[3] में एक स्त्री ने अठारह करोड़ रुपया देकर एक विश्वविद्यालय स्थापित किया। इसी प्रकार विद्या के बढ़ाने व फैलाने के लिए प्रतिवर्ष करोड़ों का दान दिया जाता है। भारतवर्ष की ब्रह्मविद्या[4] का वहां बड़ा सम्मान है! जैसा वेदान्त[5] अमरीका में है वैसा व्यावहारिक वेदान्त भारतवर्ष में आजकल नहीं है। उन लोगों ने यद्यपि हमारे वेदान्त को पचा लिया है

---

[1]वह शास्त्र, जिसके द्वारा पौधों तथा वृक्षादि के बारे में ज्ञान होता है।

[2]वह शास्त्र, जिसमें पदार्थों और तत्त्वों का वर्णन होता है।

[3]अमरीका का एक नगर।

[4]ब्रह्म को जानने की विद्या।

[5]वह सिद्धान्त, जिसमें ब्रह्म के सिवाय और किसी वस्तु की वास्तविक सत्ता नहीं मानी जाती तथा आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं स्वीकार किया जाता।

और अपने शरीर और हृदय में खपा लिया है, किन्तु वे हिन्दू नहीं बन गये। वैसे ही हम उनकी विद्या और कला-कौशल को पचाकर भी अपनी राष्ट्रीयता स्थिर रख सकते हैं। वृक्ष बाहर से खाद लेता है, किन्तु खुद खाद नहीं हो जाता। वह बाहर की मिट्टी, जल, वायु, तेज को खाता और पचाता है; किन्तु मिट्टी, जल, वायु आदि नहीं हो जाता। जापानियों ने अमरीका और यूरोप के कला-कौशल पचा लिये, किन्तु जापानी बने रहे। देवताओं ने अपने कच[1] को राक्षसों के पास भेजकर उनकी संजीवनी विद्या[2] सीख ली; किन्तु इससे वे राक्षस नहीं हो गये। इसी तरह तुम यूरोप और अमरीका जाकर उनकी विद्या सीखने से गैर-हिन्दू या गैर-हिन्दुस्तानी नहीं हो सकते। जो लोग विद्या को भूगोल की हदबन्दी में डालते हैं—"ओह! यह हमारी विद्या है, वह गैर लोगों की विद्या है। गैर लोगों की विद्या के हमारे यहां आने में पाप होगा, और हाय! हमारी विद्या और लोग क्यों ले जायं!"—ऐसे विचार-वाले लोग अपनी विद्या को घोर अविद्या में बदलते हैं। इस कमरे में प्रकाश है यह प्रकाश अत्यन्त मनो-रंजक और सुहावना है। अगर हम कहें—"यह प्रकाश हमारा है, हमारा है, हमारा है! हाय! यह कहीं बाहर के प्रकाश से मिलकर अपवित्र न हो जाय!" और इस विचार से अपने प्रकाश की रक्षा करते हुए हम परदे

---

[1] देवताओं के गुरु वृहस्पति का पुत्र।

[2] मरे हुए को जिलानेवाली विद्या।

डाल दें, किवाड़ भेड़ दें, खिड़कियां लगा दें, रोशनदान बन्द कर दें, तो हमारा प्रकाश एकदम काफूर हो जायगा। नही नहीं, काली कस्तूरी हो जायगा, अर्थात् अंधेरा-ही-अंधेरा फैल जायगा। हम लोगों ने भारतवर्ष में यह गलत नीति क्यों स्वीकार कर ली ?

काश्मीर के विषय में कहते हैं कि यदि पृथ्वी पर स्वर्ग है, तो यही है, यही है, यही है। किन्तु वे काश्मीरी लोग जो अपने फ़िरदौस, अर्थात् स्वर्ग, को छोड़ना पाप समझते हैं, वे निर्बलता, निर्धनता और अज्ञानता में प्रसिद्ध हो रहे हैं और वे बहादुर काश्मीरी पंडित जो इस पहाड़ी स्वर्ग से बाहर निकले, मानो सचमुच स्वर्ग में आ गये। उन्होंने, जहां गये, अन्य भारतवासियों को हर बात में मात कर दिया। उनमें से सब ऊंचे-ऊंचे पदों पर विराजमान हैं। जबतक जापानी जापान में रहे, निर्बल और गिरे हुए थे; किन्तु जब वे अन्य देशों में जाने लगे, वहां की हवा लगी तो बलवान हो गये। यूरोप के गरीब और प्रायः अधम स्थिति के लोग जहाजों पर सवार होकर अमरीका जा बसे। अब वे लोग दुनिया की सबसे बलिष्ठ शक्ति हैं। कुछ भारत-वासी भी बाहर गये। जबतक अपने देश में थे, कुछ पूछ न थी। अन्य देशों में गये तो उन बढ़ी-चढ़ी जातियों में भी प्रथम वर्ग में गिने गए और बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की।

: ४ :

प्राण-समर्पण

एक जापानी जहाज में कुछ भारतवासी लड़के सवार थे। जहाज में इस दर्जे के यात्रियों को जो खाने को मिला, वह किसी कारण विशेष से उन्होंने नहीं लिया। एक निर्धन जापानी लड़के ने देखा कि ये भारतवासी भूखे हैं। वह सबके लिए दूध और फल आदि खरीदकर लाया और उनके सामने रख दिया। भारतवासियों ने पहले तो अपने स्वभाव के अनुसार उसे अस्वीकार किया और पीछे खा लिया। जब जहाज से उतरने लगे तो धन्यवाद के साथ वे उन वस्तुओं का मूल्य देने लगे। जापानी लड़के ने नहीं लिया। किन्तु रोकर यों प्रार्थना करने लगा—"जब भारतवर्ष में जाओगे तो कहीं यह खयाल न फैला देना कि जापानी लोग ऐसे नालायक हैं कि उनके जहाजों पर छोटे दर्जे के यात्रियों के लिए खाने-पीने का भी यथोचित प्रबन्ध नहीं है।" ज़रा ख़याल कीजिये, एक निर्धन यात्री लड़का, जिसका जहाज के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, वह अपना धन इसलिए अर्पण कर रहा है कि कहीं कोई उसके देश के जहाजों को भी बुरा न कहे। यह लड़का अपने जीवन को देश से पृथक् नहीं मानता। सारे देश के अस्तित्व को व्यावहारिक रूप में अपना अस्तित्व अनुभव कर रहा है। क्या भक्ति है! क्या प्राण-समर्पण है! इसके बिना उन्नति और कल्याण का कोई उपाय नहीं।

"मरना भला है उसका जो अपने लिए जिये,
जीता है वह जो मर चुका इन्सान के लिए!"

आपको याद होगा कि जापान में जब जरूरत पड़ी कि रूसियों के बल को रोकने के लिए कुछ जहाज समुद्र में डुबो दिये जायं तो राजा मिकाडो[1] ने कहा—"मैं प्रजा में से किसी को विवश नहीं करता; किन्तु जिनको ऐसे जहाजों के साथ डूबना स्वीकार है, वे खुशी से आगे आवें और अपनी अर्जियां पेश करें।" हजारों अर्जियां, आवश्यकता से भी अधिक, एकदम आ गईं। अब इनमें चुनाव की जरा कठिनाई थी; किन्तु कुछ जापानी युवकों ने अपने शरीर से खून निकालकर खून से लिखे हुए प्रार्थना-पत्र पेश किये ताकि वे शीघ्र स्वीकार हो जायं। अन्त में खून से लिखी हुई अर्जियों को अधिक मान दिया गया। जब जहाजों के साथ वे लोग डूब रहे थे, तो इनमें दो-एक कप्तान यदि चाहते तो अपनी जान बचा भी सकते थे। किसी ने कहा—"कप्तान साहब! आप काम तो कर चुके, अब जान बचाकर जापान चले जाओ।" मौत की हँसी उड़ाते हुए कप्तान साहब ने तिरस्कार से उत्तर दिया—"क्या मैंने वापस जाने के लिए यहां आने की अर्जी दी थी?"

शूरवीरता का अर्थ यह नहीं कि वापस लौटा जाय।

पानी में धारा के अन्दर शेर सीधा तैरता है। यह है नक़द धर्म, यह है व्यावहारिक वेदान्त!

---

[1]जापान के राजाओं की उपाधि।

कहां है वह तलवार जो मुझे मारे ? कहां है वह अग्नि जो मुझे जला दे ? कहां है वह जल जो मुझे डुबो दे ? कहां है वायु में वह शक्ति जो मुझे सुखा दे ? मृत्यु जब मेरी अभिलाषा करके आयेगी तो उसकी ही मृत्यु हो जायगी ।

पदार्थ-विद्या[1] की जांच के लिए अमरीका में जीवित मनुष्य को काटने की आवश्यकता पड़ी । अनेक नवयुवक अपनी छातियां खोलकर खड़े हो गये कि लो, चीरो, हमें काटो, इंच-इंच करके हमारे प्राण जायं, हमें जीते-जी कटना हजार बार मुबारिक है, यदि इससे विद्या की उन्नति हो और दूसरों का कल्याण हो ।

संयुक्त राज्य अमरीका के प्रेसिडेंट अब्राहम लिंकन[2] के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार जब वह अपने मकान से दरबार को आ रहा था, मार्ग में क्या देखता है कि एक सूअर कीचड़ में फंसा हुआ अधमरा हो रहा है । बहुत ही प्रयत्न कर रहा है, किन्तु किसी तरह निकल नहीं सकता और दुःख से चिल्ला रहा है । प्रेसिडेंट से देखा न गया । सवारी से उतरकर सूअर को बाहर निकाला और उसके प्राण बचाये। सब वस्त्रों पर कीचड़ के छींटे पड़ गये, किन्तु परवाह न की और उसी दशा में दरबार में आया । लोगों ने सबब पूछा और जब

---

[1]वह विद्या जिसमें पदार्थों के गुण और अवगुण का विचार करते हुए उनके कार्य आदि का वर्णन किया जाता है ।

[2]अमरीका से दासता का अन्त करनेवाले सुप्रसिद्ध महापुरुष । (जन्म १८०९, मृत्यु १८६५)

उपर्युक्त घटना का पता लगा तो सबने बड़ी प्रशंसा करते हुए कहा कि आप बड़े दयालु और ईश्वर-भक्त हैं। प्रेसिडेंट ने कहा—"बस-बस, अधिक मत बोलो, मैंने दया-मया कुछ नहीं की। छूत की बीमारी की तरह उस सूअर के दर्द ने मुझमें अपना असर पैदा किया। अतः मैं तो केवल अपना ही दुःख दूर करने के लिए उसको निकालने गया था।" वाह! कैसा विश्व-व्यापी प्रेम है! कैसी सहानुभूति की एकता!

जापान में एक हिन्दुस्तानी विद्यार्थी शिक्षा पाता था। वह यंत्र-शास्त्र[1] की एक पुस्तक पुस्तकालय से मांगकर ले आया। आवश्यक लेख या उसके भावार्थ को तो उसने कापी पर उतार लिया, किन्तु मशीनों के नक्शों या चित्रों की वह नकल न कर सका। न उसने यही सोचा कि और लोग भी इस पुस्तक से लाभ उठाने वाले हैं; न यह खयाल किया कि इस कार्य से मेरे देश की अपकीर्ति होगी। झट पुस्तक में से वे पन्ने, जिन पर चित्र थे, फाड़ लिये और पुस्तक वापस कर दी। पुस्तक बहुत मोटी थी, भेद न खुला, किन्तु छिपे कैसे? असत्य भी कभी छिपता है? एक दिन एक जापानी विद्यार्थी उसके कमरे में आया। मेज पर उस पुस्तक के फटे हुए पन्ने पड़े थे। उन्हें देखकर उसने अफसर को सूचना दे दी और वहां नियम हो गया कि अब किसी हिन्दुस्तानी विद्यार्थी को कोई पुस्तक न दी जाय। डूब

---

[1]वह शास्त्र, जिसमें कलों को चलाने और बनाने की विद्या का वर्णन होता है।

मरने का स्थान है ! एक तो आपने उस जापानी विद्यार्थी की बात सुनी, जो जहाज पर हिन्दुस्तानी लोगों के लिए खाना लाया था और एक इस हिन्दुस्तानी की करतूत देखी। जापानी अपना सर्वस्व दे देने को तैयार है, ताकि उसके देश पर कलंक न लगने पाये और हिन्दुस्तानी विद्यार्थी अपना स्वार्थ चाहता है समस्त देश चाहे बदनाम हो या कलंकित! हाथ शरीर से यह नहीं कह सकता कि मैं अकेला या सबसे पृथक् हूं, मेरा खून और है और सारे शरीर का और। इस भेद-भाव से यह खयाल उत्पन्न होगा कि हाय! कमाऊं तो मैं, और पले सारा शरीर ! इस स्वार्थ-सिद्धि के लिए हाथ के वास्ते केवल एक ही उपाय हो सकेगा, वह यह कि जो रोटी कमाई है उसे सारे शरीर के लिए मुंह में डालने के बदले हाथ अपनी हथेली पर बांध ले या नाखूनों में घुसेड़ ले; पर क्या यह स्वार्थ-परायणता की चाल लाभदायक होगी ? हां, एक उपाय और भी है कि शहद की मक्खी से हाथ अपनी उंगलियां कटवा ले। इस तरह सारे शरीर को छोड़कर अकेला हाथ स्वयं बहुत मोटा हो जायगा। किन्तु यह मोटापन तो सूजन है, बीमारी है। इस तरह जो लोग राष्ट्र का हित अपना हित नहीं समझते, अपने-आपको राष्ट्र से भिन्न मानते हैं, ऐसे स्वार्थियों को सिवा सूजन रोग के और कुछ हाथ नहीं आता। वही हाथ शक्तिमान् और बलिष्ठ होगा जो कान, नाक, आंख, पैर आदि सारे शरीर की आत्मा को अपनी आत्मा मानकर

आचरण करता है और मनुष्य वही फले-फूलेगा जो सारे राष्ट्र की जान को अपनी जान मान लेता है।

: ५ :

आत्म-बल

जैसे अंगरेजों के यहां क्रामवेल[1] और मुसलमानों के यहां बाबर[2] हुआ है वैसे ही हिन्दुओं के यहां इस युग में रणजीतसिंह[3] हुआ है। भारत के इस गौरव और पंजाब के नर-केसरी का जिक्र है कि एक बार शत्रु की सेना अटक नदी के पार थी और उसके आदमी नदी के पार जाने से झिझकते थे। इसने अपना घोड़ा उस नदी में यह कहकर डाल दिया :

"सबै भूमि गोपाल की, या में अटक कहां ?
जाके मन में अटक है, सो ही अटक रहा।।"

उसके पीछे उसकी सारी सेना नदी को पार कर गई। यद्यपि शत्रु की सेना के सामने ये थोड़े-से आदमी थे, किन्तु उनकी यह वीरता देखकर शत्रु की सेना के दिल धड़क उठे, सब-के-सब उनके इस उत्साह से भय-

---

[1]इंगलैंड के बादशाह चार्ल्स प्रथम को मृत्यु-दण्ड देनेवाला डिक्टेटर आलीवर क्रामवेल (१५९९-१६५८ ई०)।

[2]भारत में मुगल-वंश की नींव डालनेवाला (१४८३-१५३० ई०)।

[3]पंजाब में सिक्खों का राज्य स्थापित करनेवाला (१७८०-१८३९ ई०)।

भीत होकर भाग गये और युद्ध-क्षेत्र भारत के उस सूरमा के हाथ आया। बात क्या थी ? उसके हृदय में विश्वास का जोश लहरा रहा था। वह रात-भर ईश्वर के ध्यान में मग्न रहता था। उसकी प्रार्थनाओं में खून आंसू होकर आंखों की राह बह निकलता था। यही कारण था कि उसके भीतर वह बल आ गया। आत्म-बल, विश्वास-बल या इसलाम की शक्ति से वह भर गया, अथवा दूसरे शब्दों में यों कहो कि उसने आत्मा का साक्षात्कार किया। यहां जबानी जमा-खर्च का काम नहीं। साक्षात्कार वह अवस्था है, जहां रोम-रोम से आनन्द बह रहा हो। कहते हैं, हनुमान के रोम-रोम में 'राम' लिखा हुआ था। इसी तरह रणजीतसिंह के भीतर विश्वास का बल भरा हुआ था। ऐसे साक्षात्कारवालों को नदी भी मार्ग दे देती है, पर्वत भी उनको सिर-आंखों पर उठा लेता है। संसार की सफलता का भी यही गुर—भीतर की शक्ति या आत्मबल—है, मेरे भीतरवाला परमेश्वर सर्व-शक्तिमान है।

जर्मनी का बादशाह फ्रेडरिक दी ग्रेट[1] फ्रांस के साथ लड़ रहा था। उसकी फौज हार गई और वह परास्त हुआ। कुछ लोग मारे गये, कुछ फ्रांसीसियों के हाथ आ गये। यह बादशाह विद्या-प्रेमी और ईश्वर-भक्त था। इसको आत्म-साक्षात्कार की कुछ थोड़ी-सी झलक मिल गई थी। इसने उन थोड़े-से बचे-खुचे आदमियों से कहा कि दस-पांच आदमी एक

---

[1] सन् १७१२ से १७८६ तक।

प्रकार का बाजा लेकर पूरब से बजाते हुए आओ, कुछ लोग पश्चिम से, कुछ उत्तर से और कुछ दक्षिण से। तात्पर्य यह कि वे थोड़े-से आदमी चारों ओर से बाजा बजाते हुए उस किले के भीतर आने लगे, जिसे फ्रांसीसियों ने छीन लिया था और यह नर-केसरी अकेला, बिना हथियार लिये हुए, उस किले में घुसकर उच्च स्वर से कहने लगा—"यदि अपने प्राण बचाना चाहते हो तो अपने-अपने हथियार फेंक दो और किला छोड़कर भाग जाओ, नहीं तो मेरी सेना, जो चारों ओर से आ रही है, तुमको मार डालेगी।" चारों ओर से बाजों की आवाज सुनकर और इस वीर पुरुष का साहस देखकर वे लोग घबरा गये और तत्काल किला छोड़कर भाग गये। इस वीर पुरुष ने अकेले और बिना अस्त्र-शस्त्रों के ही उस दुर्ग पर विजय पाई और शत्रुओं की हार हुई। बस, संसार में इस आत्मबल की आवश्यकता है, इस साक्षात्कार की जरूरत है। वह जो हमारे भीतर का आत्मबल है, उसके सामने सूर्य और चन्द्रमा की भी क्या बिसात है?

विश्वास, श्रद्धा, ईमान, यकीन—सबका अर्थ एक ही है। "उसका ईमान चला गया या वह बेईमान है", यह बड़ी भारी गाली है। फिर क्यों नहीं ईमान, यकीन, श्रद्धा या विश्वास लाते? किसमें? उसी एक आत्मदेव में, जो प्राणों का प्राण और जीवों का जीव है। अगर यह विश्वास हो तो सारे पाप धुल जायं।

उस विश्वास को लाओ जो ध्रुव[1] में आया, प्रह्लाद[2] में आया, नामदेव[3] में आया। इसी विश्वास की बदौलत सम्पूर्ण शंका, प्रलोभन और झगड़े दूर हो जाते हैं।

आजकल इगलैंड और अमरीका इसी विश्वास की बदौलत उन्नति कर रहे हैं। यूनान कहां गया ? उसका धर्म क्या हुआ ? रोम और मिस्र के धर्म क्या हुए किन्तु आश्चर्य की बात है कि भारतवर्ष पर विपत्ति पर-विपत्ति आवे और धर्म की गन्ध स्थिर रहे ? क्यों जी महाराज रामचन्द्र इसी देश में उत्पन्न हुए थे ? प्यारे कृष्ण भी इसी भारत की गोद में पले थे ? यह मेल और एकता ऐसे शूरवीर ही स्थिर रख सकते हैं। जिस देश में वीर नहीं, वह देश स्थिर रह नहीं सकता। इसी तरह राम और कृष्ण के नाम और वेदों की बदौलत यह देश स्थिर है। इन सूरमा महात्माओं से उसी प्रकार लाभ उठाना चाहिए, जैसे हम सूर्य से उठाते हैं। हब्स[4] देश के लोग हर वक्त सूर्य के सामने रहने के कारण कैसे काले हो जाते हैं! हमको भी राम और कृष्ण की उपासना करते हुए अपने हृदयों को काले न होने देना चाहिए। जब इन आंखों को आपने भगवान के अर्पण कर दिया, फिर तो ये आंखें ईश्वर

---

[1]पुराणों के अनुसार राजा उत्तानपाद और रानी सुनीति के विष्णु-भक्त पुत्र।

[2]पुराणों के अनुसार राजा हिरण्यकशिपु का सुप्रसिद्ध विष्णु-भक्त पुत्र।

[3]एक सुप्रसिद्ध कृष्ण-भक्त, जिनकी कथा भक्तमाल में आती है।

[4]अफ्रीका का बहुत बड़ा भाग, जहां हब्शी लोग रहते हैं।

की हो गईं, न कि आपकी । इसी प्रकार जब बाहुओं को ईश्वरार्पण कर दिया तो वे ईश्वर के हो गये । इसी तरह जब आपने अपने-आपको ईश्वरार्पण कर दिया तब आप परमात्मा के शुद्ध स्वरूप हो गये—साक्षात् भगवान् राम या कृष्ण हो गये । अब प्रेम का पीलापन ज्ञान की लालिमा में परिवर्तित हो गया और उसके परिणामस्वरूप आनन्द की मस्ती टपकने लगी ।

: ६ :

सच्चा धर्म

किसी धर्म को इसलिए अंगीकार मत करो कि वह सबसे प्राचीन है । सबसे प्राचीन होना उसके सच्चे होने का प्रमाण नहीं है । कभी-कभी पुराने-से-पुराने घरों को गिरा देना उचित होता है और पुराने वस्त्र भी हमें अवश्य बदलने पड़ते हैं । यदि कोई नये से-नया मार्ग या रीति विवेक की कसौटी पर खरी उतरे तो वह उस ताजे गुलाब के फूल के सदृश उत्तम है, जिस पर चमकती हुई ओस के कण शोभायमान हो रहे हैं ।

किसी धर्म को इसलिए भी स्वीकार मत करो कि वह सबसे नया है। सबसे नई चीजें समय की कसौटी से न परखी जाने के कारण सर्वदा सर्वश्रेष्ठ नही होतीं ।

किसी धर्म को इसलिए स्वीकार मत करो कि उस पर बहुत लोगों का विश्वास है, क्योंकि विपुल जन-

संख्या का विश्वास तो वास्तव में शैतान अर्थात् अज्ञान के धर्म पर होता है। एक समय था, जब विपुल जन-संख्या गुलामी की प्रथा को स्वीकार करती थी; परन्तु यह बात गुलामी की प्रथा के उचित होने का कोई प्रमाण नहीं हो सकती।

किसी धर्म को इसलिए स्वीकार मत करो कि उस-पर चलनेवाले कुछ थोड़े-से चुने हुए लोग हैं; क्योंकि कभी-कभी यह थोड़ी संख्या, जो किसी धर्म को स्वीकार करती है, अन्धकार और भ्रांति में होती है।

किसी धर्म को इसलिए अंगीकार मत करो कि उसका चलानेवाला कोई त्यागमूर्ति है क्योंकि ऐसे बहुत त्यागी हैं जिन्होंने सबकुछ त्याग दिया है; पर जानते कुछ भी नहीं और वस्तुतः वे धर्मोन्मादी हैं।

किसी धर्म को इसलिए अंगीकार मत करो कि वह राजाओं और महाराजाओं द्वारा प्राप्त हुआ है। राजा लोगों में प्रायः आध्यात्मिक धन का पूरा अभाव रहता है।

किसी धर्म को इसलिए अंगीकार मत करो कि वह ऐसे मनुष्यों का चलाया हुआ है, जिनका चरित्र परम श्रेष्ठ है। अनेक परम श्रेष्ठ चरित्र के लोग सत्य का सही रूप समझने में असफल रहे हैं। हो सकता है, किसी मनुष्य की पाचन-शक्ति असाधारण रूप से प्रबल हो तो भी उसे पाचन-क्रिया का कुछ भी ज्ञान न हो। एक चित्रकार है, जो कला-चातुर्य का एक

मनोहर, उत्कृष्ट और अत्युत्तम नमूना दिखलाता है, परन्तु यही चित्रकार शायद संसार भर में अत्यन्त कुरूप हो। ऐसे लोग भी हैं, जो बहुत कुरूप होते हैं, पर तो भी वे सुन्दर सत्यों का सही रूप समझते हैं। सुकरात[२] इसी प्रकार का मनुष्य था।

जिस किसी चीज को स्वीकार करो, या जिस किसी धर्म पर विश्वास करो, वह उसकी निजी श्रेष्ठता के ही कारण करो। उसकी स्वयं जांच पड़ताल करो, खूब छानबीन करो।

सत्य धर्म का मतलब 'ईश्वर' शब्द पर विश्वास की अपेक्षा भलाई पर विश्वास करना है।

: ७ :

इच्छा

एक पिंजड़ा था, जिसमें चारों ओर शीशे ही शीशे जड़े हुए थे और उसके बीचों-बीच एक पूरा खिला गुलाब का फूल रखा हुआ था। उस पिंजड़े में एक मैना छोड़ दी गई। उसने शीशों में चारों ओर पुष्प का प्रतिबिम्ब देखा। जिधर भी उसकी दृष्टि जाती, उसी ओर फूल दिखाई देता। जितनी बार वह शीशे के फूल को पकड़ने के लिए झपटी, उतनी ही बार उसकी

[२]सत्य की खोज में प्राण देने वाला यूनान का सुप्रसिद्ध महात्मा (जन्म ईसा-पूर्व ४७२ या ४६९)।

चोंच शीशे से टकराई और वह घायल होकर नीचे गिर पड़ी। हताश ज्योंही उसने शीशे से मुंह मोड़कर नीचे की ओर देखा, पिंजड़े के बीच में रखा हुआ गुलाब का फूल मिल गया। इसी प्रकार ऐ मनुष्य ! संसार ही वह पिंजड़ा है, जिस सुख को तू अपने से बाहर ढूंढ़ता है, वह स्वयं तेरे भीतर है।

ज्यों ज्यों हम अपनी परछाईं को पकड़ने के लिए आगे दौड़ते हैं, वह दूर भागती जाती है; किन्तु जब हम सूर्य की ओर मुंह करके दौड़ते हैं तो परछाईं हमारा पीछा करने लगती है। यही हमारी इच्छाओं का स्वभाव है। हम जितनी अधिक इच्छा करते हैं, उनकी पूर्ति उतनी ही अधिक कठिन होती जाती है। जब हम ईश्वर की ओर मुंह करके इच्छा करना छोड़ बैठते हैं; ये सब-के-सब पूरी होकर पीछा करने लगती हैं।

किसी फकीर के पास एक ही कम्बल था। उसे किसी ने चुरा लिया। फकीर उठा और पास के थाने में जाकर चोरी हुई चीजों की एक लम्बी सूची लिखाने लगा। उसने लिखवाया—उसका तकिया, उसका गद्दा, उसका छाता, उसका पायजामा, उसका कोट और उसी तरह की बहुत-सी चीजें चोरी चली गई हैं। सूची को इतनी लम्बी-चौड़ी रूप रेखा सुनकर चोर क्रोध के मारे प्रकट हो गया और थानेदार के सामने कम्बल फेंककर बोला—"बस, यही एक कम्बल था। इसी सड़े-गले कम्बल के बदले इसने दुनिया भर की

चीजें लिखा डाली हैं। फकीर ने झट से अपना कम्बल उठा लिया और बाहर जाने को उद्यत हुआ ही था कि थानेदार ने झूठी रिपोर्ट लिखाने के कारण फकीर को ताड़ना देनी चाही। फकीर ने कहा––"साहब, मेरी रिपोर्ट झूठी नहीं है। देखिये, यही कम्बल मेरे लिए सब कुछ है। यही मेरा तकिया है, यही गद्दा, यही छाता, यही पायजामा, यही कोट।" फिर तरह-तरह से उस कम्बल का प्रयोग करके सिद्ध कर दिया कि बेशक उसकी बात ठीक थी।

फकीरों और महात्माओं के लिए उनका एक ही ईश्वर उनके लिए सब कुछ होता है।

: ८ :

सादा जीनव, उच्च विचार

अपने आपको बड़ा और भला बनाने की कोशिश करो। अपनी क्रिया-शक्ति इधर-उधर मत बिखराओ, बाहर सुन्दर और भव्य भवन बनाने के विचार में समय नष्ट मत करो। बहुत से मकान विशाल और भव्य होते हैं, किन्तु उनमें रहनेवाले बहुत छोटे देखे जाते हैं। भारतवर्ष में बड़े-बड़े मकबरे[1] हैं, किन्तु उनमें है क्या? सड़ी-गली हड्डियां, कीड़े, मकोड़े अथवा सांप-बिच्छू।

[1]वह इमारत, जिसमें किसी की लाश गाड़ी गई हो।

अपनी स्त्री को, अपने मित्रों को, अपने आपको सुन्दर बनाने में समय नष्ट मत करो। बड़े-बड़े मकान बनाने में, तरह-तरह का सामान जुटाने में क्यों शक्ति नष्ट करते हो ? यदि तुम्हारे हृदय में यह बात घर कर जाय, यदि तुम यह समझ जाओ, यह जान लो कि जीवन का एकमात्र उद्देश्य, एकमात्र ध्येय संसार की दौलत जुटाने में शक्ति का अपव्यय करना नहीं, वरन् अपनी अन्तरंग शक्तियों का विकास करना, अपने को शिक्षित करना, बन्धन मुक्त करना, स्वयं ईश्वर बन जाना है। यदि तुम यह बात हृदय में बिठा लो और उस दिशा में अपनी शक्ति लगाओ तो पारिवारिक सम्बन्ध तुम्हारे मार्ग में कभी रुकावट नहीं डाल सकते।

कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक-दूसरे की धन-सम्पत्ति लूट लेना चाहते हैं, संसार धन के पीछे पागल है और जब उससे भी श्रेष्ठ धन (आध्यात्मिक और धार्मिक सम्पत्ति) उन्हें भेंट किया जाता है तो वे दाता को मारने दौड़ते हैं।

: ९ :

स्वावलम्बन

आप जानते हैं कि हाथी सिंह से कहीं बड़ा पशु है। हाथी का शरीर सिंह के शरीर से कहीं अधिक बलवान मालूम पड़ता है। फिर भी अकेला एक सिंह

हाथियों के समस्त झुण्ड को भगा सकता है। सिंह की शक्ति का रहस्य क्या है ? एकमात्र रहस्य यही है कि सिंह अमली वेदान्ती[1] और हाथी द्वैतवादी[2] है। हाथी शरीर पर विश्वास करता है। सिंह व्यवहारतः शरीर में विश्वास नहीं करता। वह शरीर से किसी उच्चतर वस्तु अर्थात आत्मा में विश्वास करता है। यद्यपि सिंह का शरीर अपेक्षाकृत बहुत छोटा है, परन्तु कार्यतः वह अपनी शक्ति अनन्त मानता है। हाथी चालीस या पचास और कभी-कभी सौ-सौ या दो-दो सौ का दल बना कर रहते हैं और जब कभी वे आराम करते हैं तो सदा एक प्रबल हाथी को पहरेदार बना देते हैं। उन्हें डर बना ही रहता है कि कहीं शत्रु चढ़ न आये और खा न जाये। वे यह नहीं जानते कि यदि अपने में विश्वास हो तो हममें से एक-एक हजारों सिंहों का संहार कर सकता है। किन्तु बेचारे हाथियों में भीतरी आत्मा पर विश्वास नहीं होता और फलतः साहस का भी अभाव होता है।

इसी तरह आत्म-विश्वास कल्याण का एक मूल सिद्धान्त है। वेदान्त सिखाता है कि तुम अपने-आपको अधम, नीच, दुःखी, पापी या अभागा न कहो। वेदान्त चाहता है कि तुम अपनी भीतरी शक्ति पर विश्वास करो। तुम अनन्त हो। तुम सर्वशक्तिमान् परमात्मा

---

[1]जीव और ईश्वर में भेद न माननेवाला।

[2]जीव और ईश्वर में भेद माननेवाला।

हो। अनन्त परमेश्वर तुम स्वयं हो, ऐसा विश्वास करो।

मुकदमेबाजी में उलझे हुए दो भाई न्यायकर्त्ता के सामने आये। उनमें से एक लखपति था, दूसरा कंगाल। न्यायकर्त्ता ने लखपति से पूछा कि तुम स्वयं इतने अमीर और तुम्हारा भाई इतना गरीब कैसे हो गया ? उसने कहा, "पांच वर्ष पूर्व हमें अपने बाप-दादे की बराबर-बराबर सम्पत्ति मिली थी। दो लाख रुपया मेरे हिस्से में आया था और इतना ही मेरे भाई के हिस्से में। मेरा भाई अपने को धनी समझकर आलसी हो गया और उसने सभी काम अपने नौकरों को सौंप दिये। यदि कोई चिट्ठी उसके पास आती थी तो अपने नौकरों को देकर कहता था, 'जाओ' इस काम को करो। जो कुछ भी काम करने को होता था वह नौकरों से करने को कहता था। इस तरह चैन और आराम में वह अपना समय काटने लगा। 'खाना-पीना और मौज उड़ाना' यह उसका काम रह गया। वह अपने नौकरों को सदैव आज्ञा देता था, 'जाओ' यह काम करो या वह काम करो।" अपने सम्बन्ध में उस धनिक पुरुष ने कहा, "मैंने जब अपने दो लाख रुपये पाये तो मैं अपना काम किसी दूसरे को नहीं देता था। जब कभी कुछ करना होता था, सदा मैं स्वयं उसे करने दौड़ता था और नौकरों से कहता था, 'आओ' मेरे पीछे आओ।' मेरी जीभ पर हमेशा 'आओ-आओ' शब्द रहते थे और मेरे भाई की जीभ

पर 'जाओ, जाओ'। उसके अधिकार की प्रत्येक वस्तु ने उसकी बार-बार कही बात मानी। उसके नौकर, मित्र, दौलत या सम्पत्ति सब-के-सब चल दिये, उसे बिलकुल अकेला छोड़ दिया, मेरा सिद्धान्त-वाक्य था, 'आओ'। मित्र मेरे पास आये, मेरी सम्पत्ति बढ़ी और हरएक चीज बढ़ी।"

जब हम दूसरों पर भरोसा करते हैं तब कहते हैं, "जाओ, जाओ"। इस तरह से हरएक चीज चली जायगी। और जब हम अपने पर भरोसा करते हैं और आत्मा के सिवाय किसी पर भी निर्भर नहीं होते हैं, तब सब चीजें हमारे पास आकर जमा हो जाती हैं। यदि तुम अपने को गरीब, तुच्छ कीट समझते हो तो वही हो जाते हो; और यदि तुम अपना सम्मान करते हो और अपनी आत्मा पर निर्भर होते हो, तो बड़ाई तुम्हें प्राप्त हो जाती है। जैसा तुम सोचोगे, वैसे ही अवश्य हो जाओगे।

भारत के एक स्कूल में एक निरीक्षक (इन्स्पेक्टर) आया। एक शिक्षक ने एक लड़के को दिखलाकर कहा कि यह इतना तेज है कि अमुक-अमुक काव्य, जैसे मिल्टन का 'पैराडाइज लॉस्ट'[1] इसे ज़बानी याद है। और उसका कोई भी अंश यह सुना सकता है। विद्यार्थी निरीक्षक के सामने पेश किया गया; किन्तु उसमें वेदान्त का भाव नहीं था। उसने लज्जा और

---

[1]अंग्रेजी का सुप्रसिद्ध महाकाव्य।

नम्रता धारण की। जब उससे पूछा गया, "तुम्हें अमुक खण्ड कण्ठाग्र है ?" उसने कहा, "जी नहीं, मैं कोई चीज नहीं, मैं कुछ भी नहीं जानता।" इन शब्दों को उसने नम्रतासूचक या लज्जाशीलता का लक्षण समझा। "नहीं जनाब, मैं कुछ नहीं जानता, मैंने उसे नहीं रटा था।" निरीक्षक ने फिर पूछा, किन्तु लड़के ने फिर भी कहा, "नहीं, जी ! मैं तो नहीं जानता।" शिक्षक का मुंह उतर गया। एक और लड़का था। उसे पूरी पुस्तक याद नहीं थी किन्तु उसने कहा, "मैं जानता हूं। मैं समझता हूं कि जो कोई अंश आप चाहेंगे, वह सुना सकूंगा।" निरीक्षक ने उससे कुछ प्रश्न किये। लड़के ने सब सवालों के उत्तर फटाफट दे दिये। इस लड़के ने वाक्य-पर-वाक्य सुना दिये और इनाम पाया। आप जितना मूल्य अपना समझते हैं, उससे अधिक मूल्य का आपको कोई नहीं कूतेगा।

कृपा करके अपने को दीन, हीन व अभागे प्राणी न बनाइये। तुम जैसा सोचोगे, वैसे ही हो जाओगे। अपने को ईश्वर समझो और तुम ईश्वर हो। अपने को तुम स्वतन्त्र (मुक्त) समझो और उसी क्षण तुम स्वतन्त्र व मुक्त हो जाते हो !

: १० :

यमराज की चालाकी

किसी समय में एक ऐसा चतुर मनुष्य था कि वह अपने-आपको अनेक रूपों में बदल सकता था और वे रूप इतने सच्चे होते थे कि असली और बनावटी रूपों में पहचान करना बड़ा मुश्किल था। उसे पता चला कि यमराज[1] का दूत उसे लेने आ रहा है। वह संकट में पड़ गया और सोचने लगा कि दूत से बचने के लिए क्या करना चाहिए। अन्त में उसने एक ऐसा उपाय निकाला, जिससे उसकी चतुराई की प्रशंसा की जा सकती है। उसने अपने एक दर्जन रूप धारण कर लिये। जब यमदूत आया तो वह भी यह न जान सका कि वास्तविक व्यक्ति कौन है। अतः वह चुपचाप लौट गया। दूत यमराज के पास पहुंचा और पूछने लगा कि क्या करना चाहिए? कुछ सलाह करके वह फिर पृथ्वी पर लौटा और इस मनुष्य को ले जाने का प्रयत्न करने लगा। उसने कहा, "प्रियवर! तुम सच-मुच बड़े चतुर हो, अनेक रूप धारण करने की विद्या तुम्हें खूब आती है। तुम इसमें सिद्धहस्त हो। किन्तु एक बात ऐसी है, जिसमें तुमने भूल की है। बस, एक ही त्रुटि रह गई है।" असली आदमी झट से उछल पड़ा और एकदम पूछने लगा—"कहां पर? किस बात

---

[1]यमराज—मरने पर प्राणी के कर्मों के अनुसार उसे दण्ड या उत्तम फल देनेवाले मृत्यु के देवता।

में ?" और दूत बोला—"ठीक इसी बात में !" बस, इस प्रकार उन मूक मूर्तियों में से यमदूत ने उस चतुर मनुष्य को पकड़ लिया। केवल इतना पूछना कि क्या "मैं ठीक हूं ?" ही तो गलती है। इस पूछनेवाले के सिवा तुम असल में और कौन हो सकते हो ? कर्त्ता-भाव के अभिमानी उस छोटे-से भूत को मृत्युरूप यमराज ने पकड़ लिया।

: ११ :

यह मेरी गाजर है

अकाल था। एक गरीब स्त्री मर गई। यमराज के यहां मरने के बाद की इसकी जांच-पड़ताल हो रही थी। अपने अच्छे और बुरे कर्मों को अलग-अलग छांटते हुए उसे कोई पुण्य-कर्म न मिला। मिला तो केवल यह कि उसने एक बार किसी भूखे भिखारी को एक गाजर या शायद मूली, ठीक-ठीक पता नहीं, दान में दी थी। यमराज की आज्ञानुसार वही गाजर फिर प्रकट हुई। यही गाजर उसको स्वर्ग ले जानेवाली थी। उसने गाजर को पकड़ लिया और वह गाजर उसे अपने साथ लेकर ऊपर उठने लगी।

उसी समय वह बूढ़ा भिखारी भी न्यायालय में दिखाई पड़ा। उसने स्त्री के कटे-फटे कपड़ों के सिरे को कसकर पकड़ लिया और उसके साथ वह भी ऊपर चढ़ने लगा। तब एक तीसरा क्षमाकांक्षी उसी भिखारी

के चरण पकड़ उसी प्रकार ऊपर उठने लगा। बस, धीरे-धीरे इसी भांति एक-दूसरे को पकड़े हुए लोगों की एक लम्बी पंक्ति हो गई, जो सब-की-सब ऊपर उठने-वाली इस गाजर के सहारे चढ़ने लगी। यह कैसे आश्चर्य की बात थी कि इस स्त्री को अपने नीचे लटकती हुई इन सारी आत्माओं के बोझ का बिलकुल पता तक न चला।

इस प्रकार ये क्षमाप्राप्त पुरुष ऊपर उठते गये, यहां तक कि वे स्वर्ग-द्वार पर पहुंच गये। वहां जब स्त्री ने नीचे की ओर देखा तो न जाने किस भाव से प्रेरित हो उसने अपने पीछे आनेवाली आत्माओं से कहा :

"अरे, तुम सब लोग भाग जाओ! ....यह गाजर तो मेरी है!"

और ऐसा कहते ही बिना विचारे हटाने के लिए ज्योंही अपना हाथ हिलाया कि गाजर छूट गई और वह बेचारी अपने साथ उन समस्त प्राणियों को लिये हुए धड़ाम-से नीचे आ गिरी!

: १२ :

समानता

पर्वत और गिलहरी में झगड़ा हुआ।

पर्वत ने गिलहरी को चिढ़ाया—ओ पिद्दी कहीं की!

गिलहरी ने उत्तर दिया :

निःसन्देह हो तुम बहुत बड़े !
परन्तु सब प्रकार की वस्तुओं और ऋतुओं से
मिलकर ही तो—
वर्ष, काल और संसार-मंडल बनते हैं।
और मुझे तो अपने स्थान पर रहने में
कोई अपमान नहीं दिखाई देता।
यदि मैं तुम्हारे समान बड़ी नहीं हूं,
तो तुम भी मेरे समान छोटे नहीं हो सकते।
चंचलता का तो तुममें नाम-निशान नहीं,
मैं इस बात से इन्कार नहीं करती कि
तुमपर गिलहरियों के लिए अच्छी-अच्छी
पगडण्डियां बन जाती हैं।
योग्यताएं भिन्न-भिन्न हैं, पर यहां तो सब
अपने-अपने स्थान में
ठीक यथा-स्थान बैठाये गये हैं।
यदि मैं अपनी पीठ पर जंगल नहीं उठा सकती
तो तुम भी एक सुपारी नहीं फोड़ सकते।

□

"मण्डल' का

चरित्र-निर्माणकारी साहित्य

१. गांधी-शिक्षा—भाग १

२. गांधी-शिक्षा—भाग २

३. गांधी-शिक्षा—भाग ३

२. गीता-बोध

५. ग्राम-सेवा

६. नीति-धर्म

७. बापू की सीख

८. परमहंस की कथाएं

९. विनोबा की बोध-कथाएं

१०. रामतीर्थ—संदेश ३ भाग